ओ३म्

M.A. द्वितीय सेमेस्टर
संस्कृत-विभाग P.U.
CC-VI पद्यकाव्य

प्रतिभा आर्या

DATE | PAGE 1

मेघदूतम्

मेघदूत संस्कृत-साहित्य के गीतिकाव्यों में सर्वप्रथम गिना जाता है, कालिदास शृंगार रस के कवि हैं इन्होंने मानव हृदय की प्रेमवृत्ति को लेकर ही अधिकतर कृतियों में उसकी व्याख्या की है। मेघदूत भी उससे अछूता नहीं है इसमें कुबेर के श्राप के कारण प्रिया-वियुक्त हुए यक्ष के व्यथित हृदय की वेदना भरी कहानी है, हृदय को द्रवित कर देने वाली 'विप्रलम्भ' की एक करुण गीतिका है। यह दो भागों में विभक्त है पूर्वमेघ व उत्तरमेघ। मेघदूत मन्दाक्रान्ता छन्द में लिखा हुआ 121 पद्यों का छोटा सा काव्य है। यह खण्डकाव्य, महाकाव्य से बहुत छोटा होता है क्योंकि इसमें समूचा जीवनवृत्तान्त न होकर प्रत्युत जीवन के किसी एक ही पहलू या एक ही वृत्ति - जैसे प्रेम नीति या धर्म की व्याख्या होती है। जो भेद एक उद्यान और उसमें होने वाले एक पौधे में होती है वही भेद महाकाव्य और खण्डकाव्य में है। हम यहाँ उत्तरमेघ के 42 वें श्लोक से पढ़ना आरम्भ करते हैं।

पद्य - (1) अङ्गेनाङ्गं प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तम्
सासेगाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्काण्ठितेन।
उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती
संकल्पैस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः॥

पदच्छेद -

अङ्गेनाङ्गम् = अङ्गेन + अङ्गम् = अच् सन्धि, अकः सवर्णे दीर्घः।
सासेगाश्रुद्रुतम् = सासेग + अश्रुद्रुतम् - " " अकः सवर्णे दीर्घः।
अविरतोत्कण्ठम् = अविरता उत्कण्ठा यस्य तत् अविरतोत्कण्ठम् (बहु०)
उष्ण + उच्छ्वासम् = गुणैकादेश - आद् गुणः, अच् सन्धि (स्वर सन्धि)
उष्णः उच्छ्वासः यस्य तत् (बहु०) उच्छ्वास उद् + श्वस् + घञ्।
संकल्पैस्तैर्विशति = संकल्पैः + तैः + विशति = स सजुषो रुः।

प्रसङ्ग -

दोनों ही पृथक् पृथक् होने से एक दूसरे के वियोगजन्य दुःख के कारण शारीरिक व मानसिक दोनों ही प्रकार से साम्यावस्था को प्राप्त हो गए हैं अतः क्यों न यक्ष और यक्षिणी का भाव मिलन ही हो जाए।

व्याख्या -

(वैरिणा विधिना रुद्धमार्गः दूरवर्ती (ते सहचरः)) यक्ष के न चाहते हुए सुख के दिन व्यतीत करते हुए, बिन बुलाए मेहमान की तरह यह विपत्ति जो उसके जीवन में सहसा आ टपकी थी, वैसे तो सामान्यतः कोई भी, कहीं भी, कभी भी विपत्ति की कामना नहीं करता एकमात्र भक्त को छोड़कर, भक्त कहता है भगवान् मुझे बार-२ दुःख दीजिए जिससे

Scanned with CamScanner

मैं पल-पल आपका स्मरण करता रहूँ पर यहाँ तो एक प्रेमी अपने विषय में कह रहा है वैरिणा विधिना वैरी भाग्य के द्वारा, जब समय ठीक नहीं होता तो व्यक्ति भाग्य को ही दोषी मानता है और कहता है- वैरम् अस्य अस्ति इति वैरी तेन वैरिणा। वीरस्य भावः वैरम् वीर+अण् वैरम्, वैर + इनिः = वैरी भाग्य जब व्यक्ति के प्रतिकूल है तो मानो उसने वैर ही ठान लिया है, रुद्धमार्गः = रोक दिया गया है मार्ग जिसका, किसका? यक्ष का दूरवर्ती - दूर रहने वाला, वैरी भाग्य के द्वारा रोके गए मार्ग वाले दूरस्थित (तनुना गाढतप्तेन सासेन उत्कण्ठितेन समधिकतरोच्छ्वासिना अङ्गेन) दुर्बल = कृश = पतला विरह के कारण यक्ष का शरीर दुर्बल है, गाढतप्त अत्यन्त संतप्त, गलती यक्ष ने की थी भोग उसकी पत्नी को भी भोगना पड़ रहा है अतः पश्चात्ताप की अग्नि में संतप्त हो रहा है एक विरहताप तथा दूसरा पश्चात्ताप दोनों ताप मिलकर गाढ तप्त हो गया है। असैः सह वर्तमानम् सासम् आँसुओं के सहित है यक्ष, स्त्री के समान अश्रुद्रुतम् नहीं है स्त्री के आसुओं से शरीर ही भीगा हुआ है पर यक्ष की आंखें अश्रुपूरित हैं, उत्कण्ठितेन = उत्सुक, चाह भरे अङ्ग के द्वारा समधिकतरोच्छ्वासिना = सम्यक् अधिकतरम् समधिकतरम् लम्बी आहें वाले अङ्ग से, अङ्ग शरीर के किसी एक अवयव को कहते हैं, इस प्रकार दुर्बल, अधिक संतप्त, अश्रुपूरित तथा लम्बी आहें वाले अङ्गों से (प्रतनु तप्तम् अश्रुद्रुतम् अविरतोत्कण्ठम् उष्णोच्छ्वासम् अङ्गम्) पूर्व में यक्ष के अङ्गों का वर्णन था अब उसकी सहधर्मिणी के अङ्गों का वर्णन किया जा रहा है यक्ष के तनुना शब्द का प्रयोग था अर्थात् दुर्बल यहाँ यक्षिणी के लिए प्रतनु हो गया है प्रकृष्टं तनु तत् प्रतनु अत्यन्त दुर्बल, यक्षिणी या अन्य भी कोई स्त्री विवाह से पूर्व सूक्ष्म शरीर, पतले बदन वाली होती है ऊपर से विरह वेदना आ जाए तो वियोग जन्य दुःख के कारण वह अत्यन्त दुर्बल, तप्त शरीर वाली, अश्रु = आंसुओं से भीगी हुई, अविरत + उत्कण्ठम् लगातार = निरंतन उत्सुकता से युक्त, अविरता उत्कण्ठा यस्य तत् (बहुव्रीहि समास) उष्ण + उच्छ्वासम् उष्णा उच्छ्वासः यस्य तत् गर्म श्वास (निकलने वाली, श्वास = प्राण = जो भीतर लेते हैं, उच्छ्वास = जो श्वास बाहर निकालते हैं, वियोग में दुःख के कारण गर्म-गर्म श्वासें बाहर निकल रहीं है जिसकी, ऐसे अङ्ग को (तैः संकल्पैः विशति) पूर्व में किये गए संकल्पों के द्वारा प्रवेश करता है अर्थात् जब दोनों प्रिय प्रिया दूर-दूर हैं तो मन के संकल्पों से एक दूसरे

Scanned with CamScanner

के भीतर प्रवेश करते हैं।

भावार्थ –

अपनी शारीरिक व मानसिक स्थिति का वर्णन करके यक्ष, अपनी प्रिया के साथ समानता बताता हुआ, मानसिक संकल्पों से एक दूसरे से मिलन हो सकता है एकात्मता हो गई है, एक दूजे के भीतर प्रवेश कर पा रहे हैं।

पद्य – ② शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्तात्,
कर्णे लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात्।
सोऽतिक्रान्तः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृश्य,
स्त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह॥
॥उत्तरमेघ पउ॥

पदच्छेद – शब्दाख्येयम् – शब्देन आख्यातुं योग्यम्।
यत् + अपि यदपि – जश्त्वादेश – झलां जशोन्ते – इत्सन्धि।
कथयितुम् + अभूत् + आननस्पर्शलोभात्
सोऽतिक्रान्तः = सः + अतिक्रान्तः अतो रोरप्लुतादप्लुते उकारोदेशः
आद् गुणः गुणैकादेशः, अक्/इ।
श्रवणविषयम् = श्रवणयोः विषयम् (षष्ठीतत्पुरुष समासः)
लोचनाभ्याम् + अदृश्यः।
मन्मुखेनेदमाह – मत् + मुखेन + इदम् + आह।
खरोऽनुनासिके, आद् गुणः गुणैकादेशः

प्रसङ्ग –

कवि मेघ के माध्यम से यक्ष के संदेश को यक्षिणी तक पहुँचाना चाहता है पर क्या मेघ की बातों पर उसकी प्रिया विश्वास कर पाएगी? नहीं, इसलिए इस श्लोक के माध्यम से अपनी गुप्त बात मेघ के मुख से कहलवा रहा है जिससे यक्षिणी विश्वस्त हो जाए, वह बात क्या है? इस श्लोक के माध्यम से हम जानेंगे।

व्याख्या –

मेघ यक्ष की एक बात जो यक्ष यक्षिणी ही जानते थे उसे बताना प्रारम्भ करता है (यः ते सखीनाम् पुरस्तात् यत् शब्दाख्येयम् अपि) जो तुम्हारी सखियों के सामने, जो अर्थात् यक्ष, जिस बात को, शब्दों से बोलकर कही जाने योग्य होती थी उसे भी (आननस्पर्शलोभात् कर्णे कथयितुं लोलः अभूत् कि) मुख के स्पर्श करने के लोभ से, कान में कहने के लिए उतावला रहा करता था। लोल शब्द यहाँ यक्ष की अपनी प्रिया के प्रति

Scanned with CamScanner

क्रीडाप्रियतामिश्रित आकर्षणाधिक्य का सूचक है, जो बातें सामान्य भी सबके सामने कहने योग्य थी उसे गुप्त या रहस्यात्मक बना कर अपनी प्रिय के मुख स्पर्श के लोभ के कारण कान में कहने के लिए उत्सुक रहता था, जिससे अपनी प्रिया के चुम्बन आदि क्रिया भी कर सके। किन्तु आज उसकी स्थिति इससे बिल्कुल विपरीत है चाहते हुए भी (श्रवणविषयम् अतिक्रान्तः लोचनाभ्याम् अदृश्यः) कान की पहुँच से बहुत दूर, अर्थात् समीपता तो है ही नहीं पर दूरी भी इतनी है कि कितनी तेज भी पुकारे वो आवाज यक्षिणी तक पहुँच ही नहीं सकती दूसरा कितनी भी आंख फाड़ फाड़कर देखे पर अदृश्य है, आंखों से परे, जो आंखों से न देखा जा सके, आंखों से ओझल (त्वाम् उत्कण्ठा-विरचित-पदम् मत् मुखेन 'इदम् आह) वह तुम्हारा प्रियतम यक्ष, तुम्हें उत्सुकता से बनाए गए शब्दों को मेरे मुख से, मुख के माध्यम से, ऐसा कहता है।

भावार्थ-

यक्ष जो बातें सखियों के सामने अपनी प्रिया को कही जा सकती थी उन्हें वह प्रिया के मुख के स्पर्श सुख लेने की इच्छा से कान में कहने के लिए उतावला रहता था, यह बात बताकर मेघ यक्षिणी को कहता है- "कानों की पहुँच से दूर, आखों से अदृश्य तुम्हारा पति उत्सुकता पूर्वक शब्द विन्यास से सुभूषित सन्देश को मेरे मुख के माध्यम से कहता है।

पद्य - ③ श्यामास्वंगं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातम्
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्,
एतत्कस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमास्ति॥
॥उत्तरमेघ ५५॥

पदच्छेद- श्यामासु + अङ्गम् = यण् सन्धि, इकोयणचि, स्वरसन्धि।
चकितहरिणीप्रेक्षणे - चकितहरिणी तस्याः प्रेक्षणे = (षष्ठी त.)
एतत् + एकस्मिन् = एतत्कस्मिन् - गुणसन्धि।
क्वचित् + अपि = क्वचिदपि - जशोन्ते।
सादृश्यम् + अस्ति = सादृश्यमास्ति

प्रसङ्ग-

कवि ने नारी को अतुल्य सुन्दरी वर्णन करते हुए यह दर्शाया है कि तुम्हारी विशेषताएं प्रकृति के किसी एक पदार्थ में भी हमें प्राप्त नहीं होती अतः तुम एक की तुलना प्रकृति के

Scanned with CamScanner

अनेन पदार्थों में करनी पड़ती है इसका मुझे खेद है।

व्याख्या –

हे प्रिये! (श्यामासु अङ्गम्, चकित हरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातम्) प्रियङ्गुलताओं (श्यामा) में तुम्हारे शरीर की कल्पना करता हूँ श्यामलता श्यामवर्ण की होती है किन्तु यक्षिणी गौरवर्ण की है अतः वर्णसम्यता का मिलान न करते हुए कोमलता तथा सूक्ष्मता, पतलापन की साम्यता ही अपेक्षित है चकित हरिणी प्रेक्षणे (षष्ठ्यर्थे सप्तमी) डरी हरिणी के चितवन-देखने में (तुम्हारे) कटाक्ष को, (शशिनि वक्त्र-च्छाया, शिखिनां बर्हभारेषु केशान्) चन्द्रमा में (तुम्हारी) मुख की कान्ति की साम्यता की झलक दिखाई देती है और मोर के पंख समूहों में तुम्हारे केशों की समानता, जैसे मोर पंखी रंगीन होती है वैसे ही तुम्हारे केश भी विविध रंगीन पुष्पों से सजे रहते थे बर्हाणां भारः (षष्ठ्यन्त) तेषु बर्हभारेषु (प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान् उत्पश्यामि) प्रकर्षेण तनवः प्रतनवः तेषु प्रतनुषु अधिक पतली, बहुत छोटी, नदीनां वीचयः नदीवीचयः (षष्ठ्यन्त) तासु नदी की तरङ्गों में, भौंहों के लीलापूर्वक सञ्चालन को देखता हूँ, उसकी उत्प्रेक्षा करता हूँ। (चण्डि! हन्त! क्वचित् अपि एकस्मिन् ते सादृश्यम् न अस्ति) जब इस प्रकार साम्यता यत्र तत्र करेंगे तो यक्षिणी स्वभावतः कोपाविष्ट हो उठेगी क्योंकि इस प्रकार क्या, कहीं भी साम्यता दिखी तो क्या उसी से तुम अपना मन बहला लोगे, ऐसा सोचकर प्रिया क्रोधित होगी अतः पहले ही उसे चण्डि! हे अधिक क्रोध करने वाली प्रिया! हन्त! दुःख है, खेद है, कि किसी भी एक वस्तु में प्रकृति के किसी एक ही पदार्थ में, तुम्हारी समानता नहीं है अर्थात् तुम्हारे अन्दर गुणों का ऐसा बाहुल्य है जो संसार के किसी एक पदार्थ में प्राप्त होना दुर्लभ है। तुम्हारी तुलना किसी भी एक पदार्थ से नहीं की जा सकती।

भावार्थ –

प्रियङ्गुलताओं में तुम्हारे अङ्गों की समानता देखता हूँ तो भयभीत हरिणी के चितवन में तुम्हारे कटाक्ष, चन्द्रमा में तुम्हारे मुख की शोभा की कल्पना करता हूँ तो मयूर के पंखसमूहों में तुम्हारे केशों की तुलना, नदी की सूक्ष्म तरङ्गों में तुम्हारे मधुर भ्रू सञ्चालनों की उत्प्रेक्षा करता हूँ। हे कोपाविष्ट यक्षिणी! मुझे खेद है कि तुम्हारी साम्यता किसी भी एक पदार्थ में मुझे समुपलब्ध नहीं है।

पद्य – (५) त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायां
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः॥

॥उत्तरमेघ पद॥

Scanned with CamScanner

पदच्छेद - त्वाम् + आलिख्य = त्वामालिख्य ।
शिलायाम् + आत्मानम् = शिलायामात्मानम् ।
यावत् + इच्छामि यावदिच्छामि इलां जानीते ।
चरणापतितम् चरणयोः पतितः चरणापतितः (सप्तमी त०)
अस्रैः + तावत् + मुहुः + उपचितः = अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितः;
विसर्जनीयस्य स०, रोरनुनासिके० ससजुषो रुः रुत्वे सूत्रे
क्रूरस्तस्मिन् + अपि - क्रूरः + तस्मिन् + अपि
विसर्गसन्धि हल्सन्धि
दृष्टिरालुप्यते = दृष्टिः + आलुप्यते = ससजुषो रुः

प्रसङ्ग -

कवि इस श्लोक के माध्यम से बताना चाहता है कि हम भाग्य के वैरी होने के कारण अलग अलग तो हैं ही पर दूर तो तब हो जाती है जब हम चित्त के माध्यम से एक होना चाहते हैं तो वहाँ भी भाग्य इन आसुंओं के कारण हमें एक नहीं होने देता ।

व्याख्या -

(प्रणयकुपितां त्वां धातुरागैः शिलायाम् आलिख्य)
प्रणयेन कुपिता प्रणयकुपिता ताम् - प्रणय के कारण क्रुद्ध, रूठी हुई तुमको धातु एव रागः तैः (कर्मधारय) (गेरुआदि) धातुओं के रंग से पत्थर पर चित्र कुरेद कर, जब कोई प्रेम में स्नेह में नाराज है तो उसका चित्र पत्थर पर ही बनाना उचित है दूसरा यहा राग शब्द का प्रयोग है और उसमें बहुवचन भी है जिसका कारण है कुपिता का शरीर एक ही रंग का नहीं है अपितु क्रोध के कारण नेत्र लाल, अधरोष्ठ लालिमा से युक्त, कपोल गुलाबी हो जाते हैं इसी को प्रदर्शित करने के लिए रागैः बहुवचन का प्रयोग किया गया है (आत्मानं ते चरणपतितं कर्तु यावत् इच्छामि) और तुम्हारा चित्र बनाने के उपरान्त जब, आत्मानम् = स्वयं को उस चित्र में, रूठी हुई को मनाने के लिए चरणों में गिरा हुआ चित्र में करना अथवा दिखाना चाहता हूँ (तावत् मुहुः उपचितैः, अस्रैः मे दृष्टिः आलुप्यते) तब ही बार-बार उपचित = इकट्ठे हुए उप + चि + क्त आंसुओं से मेरी दृष्टि भर जाती है, मुहुः = बार-बार यदि एक दो बार आंसु आते हैं तो पोंछा जा सकता है किन्तु बार-बार आंसुओं से आंखें भर जाती हैं तो चित्र नहीं बन पाता है क्योंकि आंसुओं के कारण दृष्टि बाधित हो जाती है अथवा आंसु टपकने पर बनाया हुआ चित्र ही बिगड़ जाता है मानो (क्रूरः कृतान्तः तस्मिन् अपि नो संगमं न सहते) अर्थात् कि क्रूर निष्ठुर, नृशंस,

Scanned with CamScanner

भाग्य = कृतान्त = यम अर्थ भी होता है जैसे यम क्रूर है उसी प्रकार यह भाग्य भी यम के समान क्रूर है ऐसा भाग्य उस चित्र में भी यथार्थ में जो हम जुदाई के दिन व्यतीत कर ही रहे हैं परन्तु यदि जड़ पदार्थ में प्रतिकृति के माध्यम से जब मिलना चाहते हैं तो वहाँ भी नौ संगम न सहते = हम दोनों के इस मिलन को सहन नहीं करता है भाग्य।

भावार्थ –

वैरी भाग्य के कारण आज हम वास्तव में दूर-दूर हैं पर यदि तुम्हारा चित्र उकेर कर कुपित हुई तुम्हें मनाने के लिए तुम्हारे पैरों में अपना गिरा हुआ चित्र बनाता हूँ तो भाग्य वहाँ भी हम दोनों का मिलन सहन नहीं कर पाता, मेरी आंखें ही अश्रुपूरित हो जाती हैं तो मैं चित्र पूर्ण नहीं कर पाता।

पद्य – ⑤ मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो-
लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसंदर्शनेषु।
पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थली देवतानाम्
मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति॥
॥उत्तरमेघ ५८॥

पदच्छेद – माम् + आकाश + प्रणिहित + भुजम्। आकाशे प्रणिहितौ भुजौ यस्य सः (बहुव्रीहि स०) तम्, प्रणिहित प्र + नि + धा (कर्म० क्त) + क्त निर्दयाश्लेषहेतोः, निर्गता दया यस्मात् स निर्दयः (बहु०) निर्दयश्चासौ आश्लेषश्च निर्दयाश्लेषः, स एव हेतुः (कर्म०) लब्धायास्ते लब्धायाः + ते विसर्गसन्धि – विसर्जनीयस्य सः। कथम् + अपि। स्वप्नसंदर्शनानि = स्वप्ने संदर्शनानि (सप्तमी तत्पुरुष) सुप्तस्य विज्ञानं स्वप्नः। बहुशो न = बहुशः + न → विसर्गसन्धि वृश्चि च। मुक्तास्थूलाः + तरु किसलयेषु + अश्रुलेशाः
विसर्जनीयस्य सः इकोयणचि

प्रसङ्ग –

इस श्लोक में कवि ने ओस कणों की तुलना वनदेवियों के आंसुओं से की है –

व्याख्या –

(स्वप्नसंदर्शनेषु मया कथम् अपि लब्धायाः ते निर्दयाश्लेषहेतोः) स्वप्न के समय में अनुभव किये गए, स्वप्न के अनुभव में मेरे द्वारा किसी भी प्रकार प्राप्त तुम्हारा प्रगाढ़ आलिङ्गन के निमित्त (आकाशप्रणिहितभुजं माम् पश्यन्तीनाम्) शून्य आकाश में फैलाई हुई बाहु वाले मुझको देखती रही, जब यक्ष स्त्री है

Scanned with CamScanner

स्वप्न में अनायास ही प्रगाढ़ आलिङ्गन की भावना से उसके दोनों भुजाएं फैली हुई ऐसी स्थिति को देखकर (स्थलीदेवतानां मुक्तास्थूलाः अश्रुलेशाः) वनदेवियों के मोती के समान मोटे-मोटे आंसुओं के कण (तरुकिसलयेषु बहुशः खलु न पतन्ति (इति) न) तरूणां किसलयेषु - वृक्ष के जो कोमल पल्लव रहते हैं उन पर बहुत बार सचमुच नहीं गिरते हैं ऐसा नहीं होता अर्थात् वनदेवियाँ जब देखती हैं कि मैं स्वप्न में ही अपने बाहुओं को गाढ़ आलिङ्गन के लिए फैलाया हुआ हूँ तो वे सहसा ही मेरी इस स्थिति को देखकर मोती के समान मोटे मोटे आंसू वृक्ष पल्लवों पर नहीं गिराती ऐसा नहीं होता अर्थात् मेरी इस स्थिति को देख कर वनदेवियाँ भी रो पड़ती हैं।

भावार्थ –

यक्ष मेघ के माध्यम से अपनी दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए बताता है कि जब कभी पूर्व अनुभव के आधार पर स्वप्न में तुम्हारे आलिङ्गन के लिए सहसा ही वास्तव में दोनों भुजाएं फैलाया हुआ वनदेवियाँ देखती हैं तो वे भी वृक्ष के पल्लवों पर अश्रुपात किए बिना नहीं रहती हैं।

Scanned with CamScanner